Wisdom Vortex:
International Journal of Social Science and Humanities

Bi-lingual, Open-access, Peer Reviewed, Refereed, Quarterly Journal

e-ISSN: 3107-3808

Wisdom Vortex: International Journal of Social Science and Humanities, Volume: 01, Issue: 03, Oct-Dec 2025

How to cite this paper:
Bhagat, A. (2025). Karpoori Thakur ke Samajwadi Chintan me Maatrisatta, Samajik Nyay aur Samaveshi Vikas: Bihar ki Samajik-Rajnitik Sanrachna ka Punarpath, *Wisdom Vortex: International Journal of Social Science and Humanities, 01*(03), 19-27. https://doi.org/10.64429/wvijsh.01.03.010

Received: 12 Aug. 2025
Accepted: 01 Oct. 2025
Published: 21 Oct. 2025

Copyright © 2025 by author(s) and Wisdom Vortex: International Journal of Social Science and Humanities. This work is licensed under the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY- 4.0).
https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/

कर्पूरी ठाकुर के समाजवादी चिंतन में मातृसत्ता, सामाजिक न्याय और समावेशी विकास: बिहार की सामाजिक-राजनीतिक संरचना का पुनर्पाठ

अजीत कुमार भगत[1]

सारांश

यह शोधपत्र कर्पूरी ठाकुर के समाजवादी चिंतन में निहित मातृसत्तात्मक मूल्य, सामाजिक न्याय और समावेशी विकास की अवधारणाओं का गहन विश्लेषण प्रस्तुत करता है। कर्पूरी ठाकुर ने राजनीति को सत्ता प्राप्ति का माध्यम नहीं, बल्कि समाजसेवा और नैतिक उत्तरदायित्व का साधन माना। उनके समाजवादी विचारों में मातृसत्ता केवल स्त्रियों की भूमिका का प्रतीक नहीं, बल्कि करुणा, सहयोग, संवेदनशीलता और समानता पर आधारित शासन दर्शन का प्रतीक है। १९७८ की आरक्षण नीति, नि:शुल्क शिक्षा और विकेंद्रीकृत शासन जैसी नीतियाँ उनके उस दृष्टिकोण को मूर्त रूप देती हैं, जिसमें समाज के वंचित वर्गों, दलितों, पिछड़ों और महिलाओं को समान भागीदारी का अवसर प्राप्त हुआ। बिहार की लोकसंस्कृति, पर्व-त्योहार और ग्राम परंपराओं से प्रेरित उनके विचार लोकतंत्र को नैतिकता और जनसहभागिता से जोड़ते हैं। ठाकुर का मानना था कि सच्चा लोकतंत्र वही है जिसमें निर्णय प्रक्रिया में समाज के प्रत्येक वर्ग की आवाज शामिल हो। इस अध्ययन में मातृसत्ता को शासन के मानवीय और संवेदनशील स्वरूप के रूप में देखा गया है, जो समावेशी विकास की दिशा में आवश्यक नैतिक आधार प्रदान करती है। निष्कर्षत:, कर्पूरी ठाकुर का समाजवादी चिंतन भारतीय लोकतंत्र के उस मानवीय स्वरूप की पुनर्स्थापना करता है, जहाँ सत्ता का उद्देश्य करुणा, समानता और सामाजिक एकता की स्थापना है।

विशिष्ट शब्द: *कर्पूरी ठाकुर, समाजवादी चिंतन, मातृसत्ता, सामाजिक न्याय, समावेशी विकास, बिहार, महिला सशक्तिकरण*

भारतीय लोकतंत्र की सामाजिक संरचना बहुआयामी, विविधतापूर्ण और ऐतिहासिक रूप से जटिल रही है। यहाँ सत्ता, संस्कृति और समाज के बीच एक सतत अंत:क्रिया दिखाई देती है, जो समय-समय पर राजनीतिक विचारधाराओं और सामाजिक आंदोलनों के रूप में अभिव्यक्त होती रही है। इसी व्यापक संदर्भ में "मातृसत्ता" और "समावेशी विकास" जैसे विचार भारतीय राजनीति में नैतिकता, संवेदना और साझी जिम्मेदारी के प्रतीक के रूप में उभरते हैं। भारत की प्राचीन जीवन

[1] शोधार्थी, राजनीतिविज्ञान विभाग, सिदो कान्हू मुर्मू विश्वविद्यालय, दुमका

संस्कृति में मातृसत्ता केवल स्त्रियों के प्रभुत्व का विचार नहीं, बल्कि करुणा, सहयोग, और समानता पर आधारित सामाजिक व्यवहार का दर्शन रही है (शर्मा, 2012)। यह दर्शन राजनीतिक दृष्टि से उस लोकतांत्रिक चेतना की नींव रखता है, जो सत्ता को केन्द्रीयकृत नहीं बल्कि सहभागी और विकेन्द्रीकृत स्वरूप में देखती है। बिहार का राजनीतिक-सांस्कृतिक परिदृश्य इस विचार का मूर्त रूप प्रस्तुत करता है। बिहार सदैव भारतीय लोकतंत्र का सामाजिक प्रयोगशाला रहा है - यहाँ से सामाजिक न्याय, पिछड़ा वर्ग सशक्तिकरण और लोक भागीदारी के कई आंदोलन उपजे। इसी पृष्ठभूमि में जननायक कर्पूरी ठाकुर का समाजवादी चिंतन विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उन्होंने सत्ता के चरित्र को सामाजिक सेवा और समानता के साधन के रूप में देखा। उनकी नीतियाँख्रचाहे वह 1978 की आरक्षण नीति हो, शिक्षा का सार्वजनिकीकरण हो या प्रशासनिक सुधार-मातृसत्तात्मक मूल्यों जैसे संवेदनशीलता, न्याय, और साझे हित की राजनीति से प्रेरित थीं (मालाकार, 2008)।

मातृसत्ता और समावेशी विकास के इस पारस्परिक संबंध को समझना आज के राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में इसलिए भी आवश्यक है क्योंकि भारत के लोकतांत्रिक ढाँचे में अब भी सामाजिक-आर्थिक असमानताएँ बनी हुई हैं। बिहार जैसे राज्यों में जाति, वर्ग, और लिंग आधारित विषमताएँ शासन और विकास की नीतियों को प्रभावित करती हैं। ऐसे में मातृसत्तात्मक मूल्य - सहयोग, देखभाल और नैतिक सहभागिता - राजनीति में संवेदनशील लोकतंत्र की पुनर्स्थापना का आधार बन सकते हैं। इस शोध का उद्देश्य बिहार के राजनीतिक-सांस्कृतिक परिदृश्य में मातृसत्ता की ऐतिहासिक और वैचारिक भूमिका का विश्लेषण करते हुए कर्पूरी ठाकुर के समाजवादी दृष्टिकोण को "समावेशी विकास" के मॉडल के रूप में प्रस्तुत करना है। अध्ययन की राजनीतिक प्रासंगिकता इस बात में निहित है कि यह न केवल बिहार की सामाजिक-राजनीतिक चेतना को समझने का अवसर प्रदान करता है, बल्कि यह भी दर्शाता है कि कैसे मातृसत्तात्मक मूल्य आधुनिक लोकतंत्र में सामाजिक न्याय, लैंगिक समानता और नागरिक सहभागिता की बुनियाद को सुदृढ़ कर सकते हैं। इस प्रकार, यह अध्ययन भारतीय राजनीति में नैतिक समाजवाद और समावेशी शासन की नई संभावनाओं की खोज है। (शर्मा, 2012; मालाकार, 2008)

भारतीय जीवन संस्कृति में मातृसत्ता की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

भारतीय जीवन संस्कृति में मातृसत्ता केवल पारिवारिक या सामाजिक संरचना का द्योतक नहीं है, बल्कि यह एक गहन वैचारिक और राजनीतिक अवधारणा है, जिसने समाज की मूल चेतना और सत्ता के स्वरूप को गहराई से प्रभावित किया है। मातृसत्ता का तात्पर्य उस सामाजिक दर्शन से है जिसमें करुणा, सहयोग, नैतिकता और समानता की भावना सामाजिक और राजनीतिक व्यवहार का आधार बनती है। भारतीय परंपरा में "शक्ति" और "प्रकृति" की उपासना इसी मातृसत्तात्मक चेतना की प्रतीक है, जो यह दर्शाती है कि समाज की स्थिरता और समरसता का मूल स्त्री तत्व में निहित है। राजनीतिक दृष्टि से देखा जाए तो मातृसत्ता उस शासन-व्यवस्था की कल्पना करती है जिसमें सत्ता का लक्ष्य नियंत्रण या प्रभुत्व नहीं, बल्कि संरक्षण और भागीदारी होता है। इस दृष्टिकोण के अनुसार शासन का सर्वोच्च उद्देश्य समाज के सभी वर्गों की सहभागिता और समान अवसर सुनिश्चित करना है (देसाई, 1994)।

वैदिक समाज में मातृसत्ता की अवधारणा विशेष रूप से प्रबल थी। ऋग्वेद और उपनिषदों में स्त्रियों की भूमिका केवल गृहिणी तक सीमित नहीं रही, बल्कि वे दार्शनिक, शिक्षक और नीति-निर्माता के रूप में भी सक्रिय थीं। गार्गी, मैत्रेयी, घोषा और अपाला जैसी विदुषियों के नाम यह प्रमाणित करते हैं कि उस युग में स्त्रियों को बौद्धिक स्वतंत्रता और सामाजिक सम्मान प्राप्त था (अग्रवाल, 2001)। वैदिक काल में स्त्रियाँ यज्ञों में भाग लेती थीं, शास्त्रार्थ करती थीं और कई बार राजनीतिक सलाहकार की भूमिका भी निभाती थीं। उत्तर वैदिक काल में यद्यपि समाज में पितृसत्तात्मक प्रवृत्तियाँ बढ़ीं, फिर भी मातृसत्तात्मक मूल्यों - जैसे संवेदना, सहयोग, और सामुदायिक न्याय - ने सामाजिक संतुलन बनाए रखा। भारत की सांस्कृतिक विविधता में मातृशक्ति का स्वरूप भिन्न रूपों में प्रकट हुआ है। दक्षिण भारत की देवी-मूलक परंपराएँ जैसे मीनाक्षी, दुर्गा, और काली, उत्तर-पूर्व की खासी और गारो जनजातियों की मातृवंशीय सामाजिक व्यवस्था, तथा कश्मीर और हिमालयी क्षेत्र की शक्ति साधना - सभी इस विचार की पुष्टि करते हैं कि भारतीय समाज में स्त्री को केवल जैविक सत्ता नहीं बल्कि नैतिक और आध्यात्मिक शक्ति के रूप में देखा गया (शर्मा, 2014)। बिहार की लोकसंस्कृति में भी मातृशक्ति के विविध रूप देखने को मिलते हैं - छठ पर्व में सूर्य की उपासना के साथ-साथ माँ गंगा और पृथ्वी की वंदना, सामा-चकेवा में बहनापा और पारिवारिक एकता का उत्सव, तथा जट-जटिन या झिझिया जैसे लोकनृत्य, जहाँ नारी श्रम, त्याग और सृजन का प्रतीक बनकर उभरती है। ये सभी परंपराएँ केवल धार्मिक अनुष्ठान नहीं, बल्कि सामाजिक समरसता और सामूहिक

सहभागिता की राजनीतिक चेतना को पुष्ट करती हैं। राजनीतिक दृष्टि से मातृसत्ता भारतीय लोकतंत्र के "समावेशी शासन" (inclusive governance) के आदर्श से गहराई से जुड़ी है। यह सत्ता के विकेंद्रीकरण, सामूहिक निर्णय और नैतिक उत्तरदायित्व की उस प्रक्रिया का समर्थन करती है जिसमें सत्ता जनता के बीच वितरित होती है। बिहार में कर्पूरी ठाकुर की नीतियाँ इसी मातृसत्तात्मक राजनीतिक दृष्टिकोण का व्यावहारिक रूप थीं। उन्होंने शासन को मातृत्व की तरह देखाख्रएक ऐसी व्यवस्था, जो अपने प्रत्येक नागरिक की समान रूप से देखभाल करती है। 1978 की आरक्षण नीति, नि:शुल्क शिक्षा योजना और महिला सशक्तिकरण के कार्यक्रम इस दृष्टि का प्रत्यक्ष परिणाम थे (मालाकार, 2008; सिंह, 2016)। उन्होंने राज्य को केवल एक प्रशासनिक इकाई नहीं, बल्कि सामाजिक परिवार के रूप में परिभाषित किया, जहाँ सरकार का दायित्व अपने सबसे कमजोर सदस्यों की रक्षा और उन्नति करना है।

इस प्रकार, मातृसत्ता भारतीय सभ्यता में केवल एक ऐतिहासिक या सांस्कृतिक विचार नहीं, बल्कि एक राजनीतिक मूल्य है – जो समानता, सहभागिता और करुणा पर आधारित शासन की परिकल्पना करता है। वैदिक काल की विदुषी नारी से लेकर बिहार की ग्रामीण लोकसंस्कृति तक, और आधुनिक समाजवादी राजनीति तक, यह अवधारणा एक सतत वैचारिक प्रवाह के रूप में उपस्थित रही है। कर्पूरी ठाकुर के समाजवादी चिंतन में यही मातृसत्तात्मक भाव निहित थाख्रजहाँ राजनीति का उद्देश्य सत्ता प्राप्ति नहीं, बल्कि समाज के वंचित, दलित और स्त्री समुदायों को समान अधिकार और सम्मान दिलाना था। इस दृष्टि से मातृसत्ता भारतीय लोकतंत्र के भीतर सामाजिक न्याय और समावेशी विकास की सबसे गहरी वैचारिक जड़ है। (देसाई, 1994; अग्रवाल, 2001; शर्मा, 2014; मालाकार, 2008; सिंह, 2016)

बिहार की सामाजिक-सांस्कृतिक संरचना और समावेशी चेतना

बिहार की सामाजिक-सांस्कृतिक संरचना भारतीय लोकतांत्रिक समाज का एक सूक्ष्म प्रतिबिंब है, जहाँ विविधता, असमानता, संघर्ष और समरसता समानांतर रूप से विद्यमान हैं। बिहार की भूमि प्राचीन काल से ही वैचारिक और सामाजिक आंदोलनों की जन्मस्थली रही है – यहीं से बौद्ध, जैन, वैष्णव और समाजवादी चेतना ने रूप लिया, और यहीं से समानता, करुणा तथा न्याय के विचारों ने राजनीति को नैतिक दिशा प्रदान की। इस दृष्टि से, बिहार का सामाजिक ढाँचा मात्र जातीय या धार्मिक विविधता का संगम नहीं, बल्कि लोकतांत्रिक चेतना के विकास की भूमि भी है (झा, 2011)।

बिहार की लोकसंस्कृति इसकी सामाजिक एकता और राजनीतिक गतिशीलता का आधार रही है। यहाँ की सांस्कृतिक परंपराएँ – छठ, सामा-चकेवा, झिझिया, जट-जटिन, होली के लोकगीत, और सोहर – सिर्फ धार्मिक आस्था के प्रतीक नहीं, बल्कि सामुदायिक सहयोग और सामाजिक समरसता के राजनीतिक प्रतीक भी हैं। ये पर्व-त्योहार स्त्री-पुरुष की समान भूमिका और श्रम की गरिमा को स्थापित करते हैं। बिहार की भाषाई विविधता – मैथिली, मगही, भोजपुरी, अंगिका और बज्जिका – ने भी सांस्कृतिक एकता को सुदृढ़ किया है। भाषाओं के इस बहुल स्वरूप में कोई एक भाषा प्रभुत्व नहीं रखती; बल्कि यह भाषिक लोकतंत्र की भावना को प्रकट करता है, जो आगे चलकर राजनीतिक लोकतंत्र की नींव बनती है (सिंह, 2014)। धार्मिक रूप से भी बिहार एक समावेशी समाज का उदाहरण प्रस्तुत करता है – यहाँ हिन्दू, मुस्लिम, सिख, ईसाई और आदिवासी परंपराएँ एक-दूसरे के साथ सह-अस्तित्व में रहती आई हैं। इन परंपराओं ने बिहार की राजनीति को नैतिकता और सहिष्णुता की दिशा दी, जो सामाजिक न्याय और जनहित की राजनीति के लिए आवश्यक आधार बनती है। जातीय और वर्गीय संरचना में परिवर्तन ने बिहार की राजनीति को गहराई से प्रभावित किया। पारंपरिक रूप से यह समाज वर्ण व्यवस्था और जातिगत श्रेणियों में बँटा हुआ था, जिसमें ऊँची जातियाँ भूमि और सत्ता पर नियंत्रण रखती थीं, जबकि दलित और पिछड़े वर्ग सामाजिक और आर्थिक रूप से वंचित रहे। स्वतंत्रता के बाद, विशेषकर 1970 के दशक में, समाजवादी आंदोलन ने इस असमानता को चुनौती दी। जयप्रकाश नारायण के "संपूर्ण क्रांति" और कर्पूरी ठाकुर के "सामाजिक न्याय" आंदोलन ने इन वंचित तबकों को राजनीतिक भागीदारी का नया मंच प्रदान किया। ठाकुर की 1978 की आरक्षण नीति ने न केवल सत्ता के सामाजिक आधार को बदला, बल्कि पहली बार बिहार की राजनीति में "पिछड़ा वर्ग" निर्णायक शक्ति के रूप में उभरा (मालाकार, 2008; झा, 2011)। यह परिवर्तन सिर्फ सत्ता के हस्तांतरण का नहीं, बल्कि सामाजिक पुनर्गठन का प्रतीक था। समाजवादी और गांधीवादी विचारधारा का प्रभाव बिहार की सामाजिक चेतना में गहराई से व्याप्त रहा है। गांधीजी के "सर्वोदय" और "स्वराज" के सिद्धांत तथा डॉ. राममनोहर लोहिया के "समान अवसर" और "जाति तोड़ो" के आह्वान ने बिहार की राजनीति को सामाजिक न्याय और लोकसहभागिता के पथ पर अग्रसर किया। कर्पूरी ठाकुर इन दोनों धाराओं का

संगम थे – गांधी की नैतिक राजनीति और लोहिया के व्यवहारिक समाजवाद का समन्वय उनके शासन दृष्टिकोण में स्पष्ट दिखाई देता है। उन्होंने राजनीति को सेवा का माध्यम माना और राज्य को सामाजिक परिवर्तन का उपकरण बनाया।

बिहार में सामाजिक चेतना और राजनीतिक भागीदारी की प्रक्रिया ने सत्ता के लोकतंत्रीकरण को संभव बनाया। पहले जहाँ सत्ता कुछ विशेष वर्गों तक सीमित थी, वहीं ठाकुर के नेतृत्व में शासन की बागडोर वंचित और श्रमिक वर्गों तक पहुँची। पंचायत स्तर से लेकर विधानसभा तक, आम जनता ने नीति-निर्माण की प्रक्रिया में अपनी भूमिका स्थापित की। यह लोकतंत्रीकरण केवल राजनीतिक नहीं, बल्कि सांस्कृतिक भी था – जहाँ लोकसंस्कृति, भाषा और परंपरा ने समाज के प्रत्येक वर्ग को आत्म-सम्मान और पहचान दी। इस प्रकार बिहार की सामाजिक-सांस्कृतिक संरचना समावेशी चेतना का केंद्र रही है। यह चेतना राजनीति में समानता, सहभागिता और सामाजिक न्याय के रूप में प्रकट हुई। कर्पूरी ठाकुर ने इस चेतना को राजनीतिक रूप दिया और दिखाया कि लोकतंत्र तभी सार्थक है जब वह समाज के सबसे कमजोर वर्ग तक पहुँचे। बिहार का यह अनुभव आज भी भारत के लोकतांत्रिक विमर्श में एक प्रेरणास्रोत है, जहाँ सामाजिक विविधता को विभाजन नहीं, बल्कि समावेश और साझेदारी की ताकत के रूप में देखा जाता है। (झा, 2011; सिंह, 2014; मालाकार, 2008)

सामाजिक न्याय और आरक्षण की राजनीति

बिहार में सामाजिक न्याय और आरक्षण की राजनीति भारतीय लोकतांत्रिक व्यवस्था में एक निर्णायक मोड़ का प्रतीक है, जिसने न केवल सत्ता-संरचना को बदला, बल्कि समाज की चेतना, वर्ग-संबंध और राजनीतिक प्रतिनिधित्व की दिशा को भी रूपांतरित किया। 1978 में कर्पूरी ठाकुर द्वारा लागू की गई आरक्षण नीति को भारत के सामाजिक पुनर्गठन का एक ऐतिहासिक दस्तावेज कहा जा सकता है। यह नीति केवल नौकरियों में हिस्सेदारी का प्रश्न नहीं थी, बल्कि यह उस गहरी ऐतिहासिक अन्याय के प्रतिकार का प्रयास थी, जिसने सदियों से समाज के बड़े हिस्से को अवसरों और संसाधनों से वंचित रखा था (मालाकार, 2008)।

1978 की इस नीति के तहत कर्पूरी ठाकुर सरकार ने पिछड़े वर्गों के लिए 26 प्रतिशत आरक्षण लागू किया – जिसमें 12 प्रतिशत अत्यंत पिछड़े वर्गों के लिए, 8 प्रतिशत अन्य पिछड़ों के लिए और 3 प्रतिशत महिलाओं के लिए आरक्षित किया गया। इसके अतिरिक्त, आर्थिक रूप से कमजोर ऊँची जातियों के लिए भी 3 प्रतिशत आरक्षण का प्रावधान किया गया। यह नीति भारतीय लोकतंत्र में पहली बार उस विचार को साकार करती थी कि सामाजिक समानता केवल अवसर की बात नहीं, बल्कि ऐतिहासिक अन्याय की पूर्ति भी है (सिंह, 2016)। इस निर्णय ने बिहार के सामाजिक-राजनीतिक ढाँचे को पूरी तरह बदल दिया। सत्ता, जो लंबे समय तक ऊँची जातियों के प्रभुत्व में थी, अब सामाजिक रूप से विविध वर्गों में विभाजित होने लगी। यह परिवर्तन केवल प्रतिनिधित्व का नहीं, बल्कि राजनीतिक चेतना के विकेंद्रीकरण का भी प्रतीक था। आरक्षण नीति के सामाजिक-आर्थिक परिणाम व्यापक थे। इस नीति के कारण सरकारी नौकरियों और शैक्षणिक संस्थानों में वंचित तबकों की भागीदारी में वृद्धि हुई। इससे पहले जहाँ प्रशासनिक ढाँचे में ऊँची जातियों का वर्चस्व था, वहीं इस नीति के बाद नई सामाजिक शक्तियाँ उभरने लगीं। यह वर्गीय पुनर्गठन केवल संस्थागत नहीं, बल्कि सांस्कृतिक और वैचारिक भी थाख़्रजहाँ "पिछड़ा" होना अब कमजोरी नहीं, बल्कि राजनीतिक पहचान का प्रतीक बन गया (झा, 2011)। हालांकि, इस नीति के विरोध में सवर्ण वर्गों और शहरी मध्यमवर्गीय समूहों ने तीखी प्रतिक्रिया व्यक्त की। बिहार के कई हिस्सों में प्रदर्शन, विरोध और सामाजिक तनाव की स्थितियाँ बनीं, लेकिन इस संघर्ष ने सामाजिक न्याय की बहस को राष्ट्रीय मंच पर ला खड़ा किया। मीडिया और जनमत की भूमिका इस दौर में अत्यंत निर्णायक रही। मुख्यधारा का मीडिया, जो उस समय प्रायः शहरी उच्चवर्गीय दृष्टिकोण से प्रभावित था, कर्पूरी ठाकुर की नीति को "वोट बैंक राजनीति" या "सामाजिक विभाजन" की रणनीति के रूप में प्रस्तुत करता रहा (ठाकुर, 1981)। लेकिन स्थानीय और वैकल्पिक मीडिया, विशेषकर हिंदी अखबारों और क्षेत्रीय पत्रिकाओं ने इसे समाज के निचले तबकों के आत्मसम्मान की पुनर्स्थापना के रूप में देखा। कई प्रगतिशील लेखकों और पत्रकारों ने यह तर्क दिया कि ठाकुर की नीति ने लोकतंत्र को उसकी वास्तविक दिशा में आगे बढ़ाया – जहाँ राजनीतिक सत्ता केवल अभिजात वर्ग की बपौती न रहकर जनता की साझी जिम्मेदारी बनी। यही वह दौर था जब सामाजिक न्याय की अवधारणा को जनता के आंदोलन से जोड़ा गया और राजनीतिक विमर्श में "प्रतिनिधित्व" और "भागीदारी" की भाषा ने जन्म लिया (कुमार, 1984)। आरक्षण नीति ने बिहार की राजनीति में जातीय गठबंधन और वर्गीय पुनर्गठन की एक नई प्रक्रिया शुरू की। पिछड़े वर्गों, दलितों और अल्पसंख्यकों के बीच राजनीतिक एकता का नया समीकरण बना। यह

"सामाजिक न्याय" की राजनीति थी, जो केवल सत्ता प्राप्ति का साधन नहीं, बल्कि सामाजिक परिवर्तन का मिशन थी। कर्पूरी ठाकुर की यह सोच डॉ. लोहिया की "पिछड़ा पावे सौ में साठ" की अवधारणा से जुड़ी थी, जिसमें यह स्पष्ट कहा गया था कि लोकतंत्र तभी सार्थक होगा जब सत्ता संरचना समाज की विविधता को प्रतिबिंबित करे (लोहिया, 1962)। बिहार में यही विचार बाद में लालू प्रसाद यादव और नीतीश कुमार की राजनीति की नींव बना। राजनीतिक दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि 1978 की आरक्षण नीति ने बिहार को "सामाजिक लोकतंत्र" की दिशा में अग्रसर किया। ठाकुर ने यह सिद्ध कर दिया कि विकास केवल आर्थिक नहीं, बल्कि प्रतिनिधित्व आधारित भी होता है। आरक्षण के माध्यम से उन्होंने शासन के स्वरूप को मातृसत्तात्मक और समाजवादी मूल्यों से जोड़ा – जहाँ राज्य अपने कमजोर वर्गों की देखभाल करता है। इस दृष्टि से यह नीति केवल एक प्रशासनिक निर्णय नहीं, बल्कि समाजवादी राजनीति का नैतिक घोषणापत्र थी।

सारांशतः, कर्पूरी ठाकुर की आरक्षण नीति ने बिहार में सत्ता और समाज के बीच एक नया संवाद स्थापित किया। उसने सामाजिक न्याय को राजनीति के केंद्र में रखा, और उस लोकतंत्र की नींव रखी जिसमें समानता, प्रतिनिधित्व और आत्मसम्मान के मूल्य प्रमुख हैं। यह नीति न केवल बिहार की राजनीति का निर्णायक अध्याय थी, बल्कि भारतीय लोकतंत्र में समावेशी शासन की दिशा में एक ऐतिहासिक कदम भी थी। (मालाकार, 2008; झा, 2011; सिंह, 2016; ठाकुर, 1981; कुमारत, 1984; लोहिया, 1962)

महिला सशक्तिकरण और मातृसत्ता का समाजवादी दृष्टिकोण

भारतीय लोकतंत्र में महिला सशक्तिकरण की प्रक्रिया केवल सामाजिक परिवर्तन की दिशा नहीं रही, बल्कि यह राजनीतिक और वैचारिक क्रांति का भी प्रतीक बनी। बिहार के समाजवादी आंदोलन के इतिहास में यह विमर्श विशेष रूप से महत्वपूर्ण है क्योंकि कर्पूरी ठाकुर जैसे नेताओं ने स्त्रियों के अधिकार और सम्मान को केवल "कल्याणकारी नीतियों" के माध्यम से नहीं, बल्कि सामाजिक न्याय और मातृसत्तात्मक नैतिकता के आधार पर स्थापित किया। उनके चिंतन में महिला सशक्तिकरण का अर्थ केवल आर्थिक या शैक्षणिक उन्नति नहीं, बल्कि सत्ता-संरचना के नैतिक पुनर्गठन से था। वे मानते थे कि यदि समाज में वास्तविक लोकतंत्र स्थापित करना है, तो सत्ता और नीति-निर्माण में स्त्रियों की समान भागीदारी अनिवार्य है (मालाकार, 2008)।

कर्पूरी ठाकुर का दृष्टिकोण स्त्री शिक्षा, रोजगार और राजनीतिक प्रतिनिधित्व के माध्यम से सशक्तिकरण को मूर्त रूप देता है। उन्होंने शिक्षा को स्त्री-स्वतंत्रता का प्रमुख आधार माना। अपने शासनकाल के दौरान उन्होंने "प्रवेशिका तक निःशुल्क शिक्षा" की ऐतिहासिक पहल की, जिससे ग्रामीण और गरीब परिवारों की बेटियाँ पहली बार विद्यालयों तक पहुँच सकीं। यह निर्णय केवल शैक्षणिक नीति नहीं था, बल्कि समाज में स्त्रियों के प्रति दृष्टिकोण में परिवर्तन का प्रतीक था। साथ ही, उन्होंने उच्चाधिकारियों को हिंदी में टिप्पणी करने और लोक प्रशासन में जनसुलभता बढ़ाने का आदेश देकर नौकरशाही के उस पितृसत्तात्मक स्वरूप को चुनौती दी, जो आम जनता, विशेषकर महिलाओं को प्रशासनिक प्रक्रिया से दूर रखता था (झा, 2011)। रोजगार के क्षेत्र में ठाकुर ने महिलाओं की भागीदारी को बढ़ाने के लिए ठोस कदम उठाए। 1978 के आरक्षण निर्णय में उन्होंने 3 प्रतिशत आरक्षण महिलाओं के लिए सुरक्षित कियाख़्यह उस समय की भारतीय राजनीति में अभूतपूर्व कदम था। यह नीति यह दर्शाती है कि ठाकुर केवल जातीय न्याय के प्रतीक नहीं, बल्कि लैंगिक समानता के भी प्रवर्तक थे। समाजवादी विचारधारा के अनुरूप वे यह मानते थे कि आर्थिक आत्मनिर्भरता ही स्त्री की वास्तविक स्वतंत्रता का आधार है (सिंह, 2016)। उन्होंने यह सुनिश्चित किया कि ग्रामीण विकास योजनाओं में महिलाओं की प्रत्यक्ष भागीदारी हो, चाहे वह शिक्षा मिशन हों या सहकारिता समितियाँ। राजनीतिक प्रतिनिधित्व के क्षेत्र में कर्पूरी ठाकुर की दृष्टि और भी व्यापक थी। उन्होंने स्त्रियों के लिए केवल आरक्षण की नीति नहीं बनाई, बल्कि उन्हें राजनीतिक निर्णय प्रक्रिया का सक्रिय अंग बनाने का प्रयास किया। उनकी प्रेरणा से बिहार की पंचायतों और स्थानीय निकायों में महिलाओं की भागीदारी धीरे-धीरे बढ़ी। यही परंपरा आगे चलकर 1990 के दशक में 33 प्रतिशत आरक्षण की नीति का आधार बनी। ठाकुर मानते थे कि लोकतंत्र का वास्तविक अर्थ तभी है जब निर्णय-प्रक्रिया में "नारी दृष्टि" शामिल हो, क्योंकि स्त्री शासन में करुणा, नैतिकता और संवेदनशीलता के मूल्य लाती है – जो किसी भी लोकतांत्रिक राज्य की आत्मा हैं (चौधुरी, 2010)।

कर्पूरी ठाकुर की नीतियों में स्त्री के प्रति संवेदनशीलता का यह स्वरूप स्पष्ट रूप से मातृसत्तात्मक समाजवाद की ओर संकेत करता है। वे मानते थे कि समाज की स्थिरता और प्रगति का आधार मातृशक्ति है – वह केवल परिवार की धुरी नहीं, बल्कि

समाज की नैतिक मार्गदर्शक भी है। बिहार की लोकपरंपराओं में नारी की यह छविख्रजैसे छठ पर्व की अर्घ्य देने वाली स्त्री या सामा-चकेवा में पारिवारिक एकता का प्रतीक बहन-राजनीतिक दृष्टि से भी प्रेरक रही। ठाकुर ने इसी सांस्कृतिक प्रतीकवाद को अपने शासन दर्शन में स्थान दिया। उन्होंने राजनीति को "मातृत्व की सेवा" कहा, जिसका अर्थ था समाज के सभी वर्गों की समान देखभाल और सुरक्षा (मालाकार, 2008)। पितृसत्ता और मातृसत्ता के द्वंद्व में ठाकुर का समाजवादी दृष्टिकोण एक वैकल्पिक नैतिक विमर्श प्रस्तुत करता है। पितृसत्तात्मक राज्य शक्ति और नियंत्रण पर आधारित होता है, जबकि मातृसत्तात्मक शासन समानता, सहभागिता और संरक्षण के मूल्यों पर टिका होता है। कर्पूरी ठाकुर ने सत्ता को "नियंत्रण का औजार" नहीं, बल्कि "सेवा का माध्यम" माना। इस दृष्टिकोण से उन्होंने न केवल पुरुष प्रभुत्व वाले सत्ता-संरचनाओं को चुनौती दी, बल्कि प्रशासनिक, सामाजिक और राजनीतिक जीवन में एक नई संवेदनशीलता का संचार किया।

उनकी नीतियाँ गांधीवादी "सत्याग्रह" और लोहियावादी "समान अवसर" के सिद्धांतों से प्रेरित थीं, परंतु उनमें मातृसत्तात्मक भाव-करुणा और देखभाल-विशेष रूप से दृष्टिगोचर होता है। वे सत्ता को "माँ की तरह" देखते थे-एक ऐसी शक्ति जो अपने सभी बच्चों को समान प्रेम और सुरक्षा देती है। यही कारण था कि उनकी राजनीति में दया और न्याय एक-दूसरे के पूरक बन जाते हैं। इस दृष्टिकोण ने न केवल बिहार की राजनीति को नया आयाम दिया, बल्कि भारतीय समाजवाद को एक मानवीय चेहरा प्रदान किया। कर्पूरी ठाकुर की नीतियों ने यह सिद्ध कर दिया कि सामाजिक न्याय केवल वर्गीय या जातीय संतुलन की बात नहीं, बल्कि लैंगिक समानता और नैतिक शासन का प्रश्न भी है। उन्होंने भारतीय राजनीति में यह दृष्टि स्थापित की कि "सशक्तिकरण" का अर्थ सत्ता प्राप्ति नहीं, बल्कि समाज के कमजोर वर्गों की सामूहिक उन्नति है। स्त्री शिक्षा, रोजगार और प्रतिनिधित्व की दिशा में उनके प्रयास इस विचार के साक्षात उदाहरण हैं। उनके नेतृत्व में मातृसत्ता एक सामाजिक मूल्य नहीं, बल्कि शासन की संवेदनशील राजनीति का प्रतीक बन गई। (मालाकार, 2008; झा, 2011; सिंह, 2016; चौधुरी, 2010)

प्रशासनिक सुधार, विकेंद्रीकरण और स्वशासन

कर्पूरी ठाकुर का शासन दृष्टिकोण भारतीय लोकतंत्र की उस परंपरा का प्रतिनिधित्व करता है जिसमें सत्ता का उद्देश्य केंद्रीकृत अधिकार नहीं, बल्कि समाज के सभी वर्गों तक समान भागीदारी और अवसर पहुँचाना है। उन्होंने शासन को एक participatory democracy के रूप में देखा - जहाँ निर्णय केवल सरकार या नौकरशाही तक सीमित न हों, बल्कि जनता की सक्रिय भागीदारी के माध्यम से लिए जाएँ। उनके प्रशासनिक सुधार इस लोकतांत्रिक दर्शन के जीवंत उदाहरण हैं, जिन्होंने बिहार में शासन प्रणाली को जनता के निकट लाने और उसकी सामाजिक वैधता को सशक्त बनाने का कार्य किया। कर्पूरी ठाकुर के लोकतांत्रिक शासन दृष्टिकोण की जड़ें गांधी और लोहिया के विचारों में थीं। गांधीजी का "ग्राम स्वराज" और लोहिया का "समान अवसर" का सिद्धांत उनके राजनीतिक व्यवहार में गहराई से प्रतिबिंबित होता था। ठाकुर मानते थे कि लोकतंत्र का सबसे सशक्त स्वरूप तभी संभव है जब शासन bottom-up approach को अपनाए, न कि ऊपर से थोपी गई नीतियों के माध्यम से। उनके शासन में प्रशासन केवल आदेश देने वाली संस्था नहीं, बल्कि संवाद और उत्तरदायित्व का माध्यम बना। उन्होंने नौकरशाही के पितृसत्तात्मक चरित्र को चुनौती दी और लोक प्रशासन को अधिक पारदर्शी, जनसुलभ और उत्तरदायी बनाने की दिशा में ठोस कदम उठाए (झा, 2011)। उनके प्रशासनिक सुधारों का एक महत्वपूर्ण आयाम थाख्र ग्राम पंचायतों और सहकारिता समितियों को सशक्त बनाना। कर्पूरी ठाकुर ने यह महसूस किया कि बिहार की आर्थिक और सामाजिक प्रगति तभी संभव है जब निर्णय-प्रक्रिया ग्राम स्तर पर लोकतांत्रिक हो। उन्होंने पंचायती राज संस्थाओं को पुनर्गठित किया, जिससे ग्रामीण नागरिकों को स्थानीय शासन में प्रत्यक्ष भागीदारी का अवसर मिला। उन्होंने ग्राम सभाओं को केवल विकास की इकाई नहीं, बल्कि लोकतंत्र की मूल इकाई के रूप में देखा। सहकारिता समितियों को ग्रामीण अर्थव्यवस्था का आधार बनाकर उन्होंने यह सुनिश्चित किया कि आर्थिक निर्णय सामूहिक हित के अनुरूप हों, न कि कुछ गिने-चुने अभिजात वर्गों के लाभ के लिए (मालाकार, 2008)। कर्पूरी ठाकुर की नीति का एक अन्य महत्वपूर्ण तत्व विकेंद्रीकरण था। उन्होंने यह सिद्धांत स्थापित किया कि शासन की प्रभावशीलता तभी बढ़ेगी जब निर्णय लेने की शक्ति स्थानीय इकाइयों को दी जाए। इस दिशा में उन्होंने प्रशासनिक स्तरों पर कार्यों का विभाजन किया और स्थानीय निकायों को वित्तीय तथा प्रशासनिक अधिकार दिए। विकेंद्रीकरण केवल संस्थागत सुधार नहीं था, बल्कि यह सामाजिक परिवर्तन का साधन भी था। ठाकुर ने पिछड़े वर्गों, दलितों और महिलाओं को स्थानीय शासन में प्रतिनिधित्व देने पर विशेष बल दिया। उन्होंने माना कि सामाजिक

न्याय तभी संभव है जब सत्ता के प्रत्येक स्तर पर वंचित वर्गों की भागीदारी सुनिश्चित हो। उनकी नीति इस विचार से प्रेरित थी कि प्रतिनिधित्व केवल विधानसभा या संसद तक सीमित नहीं होना चाहिए, बल्कि पंचायत और सहकारिता समितियों तक विस्तृत होना चाहिए (सिंह, 2016)।

महिलाओं और पिछड़े वर्गों की भागीदारी के संदर्भ में ठाकुर के प्रशासनिक सुधार विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। उन्होंने महिलाओं के लिए शिक्षा और रोजगार के अवसरों के साथ-साथ शासन में हिस्सेदारी के द्वार भी खोले। पंचायत स्तर पर महिलाओं की भागीदारी ने ग्रामीण शासन में संवेदनशीलता और सामाजिक संतुलन को सुदृढ़ किया। यही परंपरा आगे चलकर बिहार और भारत के स्तर पर 73वें और 74वें संविधान संशोधनों के माध्यम से संस्थागत रूप प्राप्त कर सकी। इस अर्थ में कर्पूरी ठाकुर के विचार "संवैधानिक विकेंद्रीकरण" से पहले ही grassroots democracy के रूप में व्यवहारिक रूप से प्रकट हो चुके थे (चौधुरी, 2010)। समावेशी नीति-निर्माण की संस्थागत प्रक्रिया ठाकुर के शासन का सबसे महत्वपूर्ण आयाम थी। वे यह समझते थे कि नीतियाँ केवल नौकरशाही या राजनीतिक उच्च वर्ग द्वारा नहीं, बल्कि उन लोगों के अनुभवों से बननी चाहिए जो समाज की निचली पंक्तियों में रहते हैं। इसी दृष्टि से उन्होंने प्रशासनिक तंत्र में स्थानीय प्रतिनिधित्व की व्यवस्था को बढ़ावा दिया। उन्होंने "जनता दरबार" जैसी परंपरा शुरू की, जहाँ मुख्यमंत्री स्वयं जनता की समस्याएँ सुनते थे। यह कदम केवल प्रतीकात्मक नहीं था, बल्कि प्रशासनिक संस्कृति में नैतिक उत्तरदायित्व का पुनर्स्थापन था। इससे शासन और जनता के बीच विश्वास का सेतु निर्मित हुआ। कर्पूरी ठाकुर की प्रशासनिक नीतियाँ केवल तकनीकी सुधारों तक सीमित नहीं थीं; वे राजनीतिक दर्शन का विस्तार थीं। उन्होंने यह प्रतिपादित किया कि लोकतंत्र का सार केवल चुनाव या प्रतिनिधित्व नहीं, बल्कि दायित्व के साथ भागीदारी (participation with responsibility) है। इस दृष्टि से उनका शासन मॉडल आज के "उत्तम शासन (good governance)" के सिद्धांत से कहीं अधिक नैतिक और समावेशी था। उनका उद्देश्य एक ऐसे राज्य की परिकल्पना करना था जो केवल शासन न करे, बल्कि अपने नागरिकों के साथ साझेदारी में समाज का निर्माण करे।

कर्पूरी ठाकुर के प्रशासनिक सुधारों ने बिहार को लोकतांत्रिक संवेदनशीलता और संस्थागत भागीदारी के स्तर पर एक नया आयाम दिया। उन्होंने साबित किया कि विकेंद्रीकरण केवल सत्ता का बँटवारा नहीं, बल्कि सामाजिक न्याय का व्यावहारिक साधन है। उनकी नीतियाँ आज भी यह सिखाती हैं कि शासन की सफलता का मापदंड केवल विकास दर नहीं, बल्कि यह है कि निर्णय लेने की प्रक्रिया में समाज का सबसे कमजोर व्यक्ति कितना सुना और शामिल किया जाता है। इस दृष्टि से, कर्पूरी ठाकुर का शासन दर्शन भारतीय लोकतंत्र की नैतिक आत्मा को पुनर्जीवित करने वाला एक युगांतरकारी प्रयोग था।

लोक संस्कृति, पर्व-त्योहार और समावेशी समाज

बिहार की लोक संस्कृति अपने आप में विविधता, सह-अस्तित्व और सामाजिक एकता का प्रतीक रही है। यह संस्कृति केवल धार्मिक या पारंपरिक व्यवहारों का समूह नहीं, बल्कि एक ऐसी सामाजिक-राजनैतिक चेतनता (socio-political consciousness) है, जिसने सदियों से समाज के विभिन्न वर्गों को एक साझा नैतिक और सांस्कृतिक सूत्र में बाँधा है। लोक संस्कृति ने बिहार की सामाजिक संरचना में लोकतांत्रिक मूल्यों के बीजारोपण का कार्य किया, जहाँ सामूहिकता, सहभागिता और नैतिक उत्तरदायित्व जैसे सिद्धांत स्वतः विकसित हुए। इस दृष्टि से देखा जाए तो बिहार की लोक परंपराएँ केवल सांस्कृतिक अभिव्यक्तियाँ नहीं हैं, बल्कि जमीनी स्तर का लोकतंत्र की सामाजिक नींव हैं (कुमार, 2015)। बिहार के प्रमुख लोक पर्वों-छठ, सामा-चकेवा, झिझिया, और जट-जटिन-को यदि राजनीतिक दृष्टि से देखा जाए, तो ये लोकजीवन में लोकतांत्रिक चेतना के प्रस्फुटन का प्रतीक हैं। छठ पर्व, जो सूर्योपासना का उत्सव है, सामाजिक समानता का एक अद्वितीय उदाहरण प्रस्तुत करता है। इस पर्व में कोई जाति, वर्ग या लिंग भेद नहीं होता। हर व्यक्ति एक समान भाव से सूर्यदेव को अर्घ्य अर्पित करता है। इसमें भागीदारी का स्वरूप सर्वसमावेशी है - गाँव और शहर दोनों में समान रूप से। यह पर्व उस समाजवादी विचार का मूर्त रूप है, जिसे कर्पूरी ठाकुर ने अपनी राजनीति में स्थापित कियाख्रजहाँ धर्म और संस्कृति का अर्थ विभाजन नहीं, बल्कि एकता और न्याय हो (सिंह, 2017)।

सामा-चकेवा और झिझिया जैसे पर्व महिलाओं की सामाजिक और सांस्कृतिक भागीदारी को रेखांकित करते हैं। इन उत्सवों में महिलाएँ ही मुख्य भूमिका निभाती हैं - वे गीत, नृत्य और प्रतीकात्मक वस्तुओं के माध्यम से न केवल सौंदर्य और परंपरा का प्रदर्शन करती हैं, बल्कि समाज में सहयोग, संवाद और एकता की भावना को भी सशक्त करती हैं। राजनीतिक दृष्टि से

देखें तो ये पर्व स्त्री अभिकर्तृत्व की अभिव्यक्ति हैं, जो मातृसत्ता के सामाजिक स्वरूप को सशक्त बनाते हैं। कर्पूरी ठाकुर के शासनकाल में स्त्री शिक्षा और समान अवसरों पर दिया गया बल इसी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि से प्रेरित था। उन्होंने महिला सशक्तिकरण को केवल नीतिगत लक्ष्य नहीं, बल्कि सांस्कृतिक चेतना के पुनरुद्धार के रूप में देखा (सिन्हा, 2020)। जट-जटिन लोककथा आधारित पर्व है, जो ग्रामीण बिहार में विशेष रूप से लोकप्रिय है। यह पर्व पति-पत्नी के संबंधों में निष्ठा, संघर्ष और सामाजिक नैतिकता की कहानी कहता है। राजनीतिक अर्थों में यह सामाजिक अनुशासन और नैतिक जिम्मेदारी का प्रतीक हैख्रलोकतंत्र में नैतिकता के वही मूल तत्व, जो कर्पूरी ठाकुर के नैतिक राजनीति का आधार थे। वे मानते थे कि लोकतंत्र तभी टिकाऊ है जब समाज में पारस्परिक सम्मान, सहयोग और उत्तरदायित्व की भावना हो। जट-जटिन की कथा यही सिखाती है कि सामाजिक जीवन में स्थायित्व केवल अधिकारों से नहीं, बल्कि कर्तव्यों से भी आता है। लोक संस्कृति के माध्यम से लोकतंत्र का सामाजिक विस्तार बिहार की राजनीति की सबसे बड़ी उपलब्धि रही है। लोक परंपराओं ने सामाजिक गतिशीलता को उस दिशा में प्रेरित किया, जहाँ समाज के हाशिए पर खड़े वर्ग भी राजनीतिक विमर्श का हिस्सा बने। यह वह सांस्कृतिक जमीन थी, जिस पर कर्पूरी ठाकुर जैसे नेताओं ने सामाजिक न्याय और समावेशी विकास की राजनीतिक संरचना तैयार की। उन्होंने लोक संस्कृति के मूल्यों-सहयोग, समानता, और न्यायख्रको राजनीतिक नीतियों में रूपांतरित किया। उदाहरण के लिए, उनकी आरक्षण नीति या शिक्षा में समान अवसर की पहल, दोनों में "सबको साथ लेकर चलने" की वही भावना विद्यमान थी जो लोक उत्सवों की आत्मा में निहित है (झा, 2011)।

सांस्कृतिक समरसता और राजनीतिक स्थिरता के संबंध को समझना बिहार के विकास की दृष्टि से अत्यंत आवश्यक है। जिन समाजों में सांस्कृतिक संवाद और सह-अस्तित्व की परंपरा जीवित रहती है, वहाँ राजनीतिक संघर्ष भी अंततः लोकतांत्रिक संस्थाओं के माध्यम से हल होते हैं। बिहार की लोक संस्कृति ने इसी सह-अस्तित्व की भावना को संरक्षित किया। चाहे वह भोजपुरी और मैथिली की सांस्कृतिक पहचान हो, या मगही और अंगिका की क्षेत्रीय विशेषताएँ - सभी ने मिलकर एक ऐसी बहुलतावादी पहचान गढ़ी, जो राज्य की राजनीतिक स्थिरता की नींव बनी। कर्पूरी ठाकुर ने इन सांस्कृतिक तत्वों को राजनीतिक दर्शन में रूपांतरित करते हुए "लोक राजनीति" की अवधारणा को व्यवहार में लाया। उन्होंने बताया कि लोकतंत्र केवल संवैधानिक ढाँचा नहीं, बल्कि सांस्कृतिक चेतना का विस्तार है। उनकी राजनीति में लोक गीत, लोक परंपरा और ग्रामीण जीवन की नैतिकता नीतिगत दृष्टिकोण से जुड़ी रही। यही कारण है कि उनके शासन में जनता के साथ संवाद, पारदर्शिता और सह-अस्तित्व का भाव सशक्त हुआ। इस प्रकार बिहार की लोक संस्कृति, पर्व-त्योहार और परंपराएँ न केवल सामाजिक एकता का प्रतीक हैं, बल्कि उन्होंने राज्य के लोकतांत्रिक ढाँचे को वैचारिक और नैतिक ऊर्जा भी प्रदान की है। लोक परंपराओं के इस राजनीतिक रूपांतरण ने यह सिद्ध किया कि संस्कृति केवल अतीत का हिस्सा नहीं, बल्कि समावेशी भविष्य के निर्माण का सक्रिय साधन है। कर्पूरी ठाकुर की राजनीति इसी सांस्कृतिक लोकतंत्र की व्यवहारिक परिणति थी, जहाँ लोक संस्कृति और राजनीतिक संरचना परस्पर पूरक हो उठीं - एक ने दूसरे को वैधता दी, और दोनों ने मिलकर "समावेशी समाज" की संकल्पना को साकार किया।

निष्कर्ष

कर्पूरी ठाकुर का समाजवादी चिंतन भारतीय लोकतंत्र की आत्मा में निहित समानता, न्याय और सहभागिता के सिद्धांतों को व्यावहारिक रूप में प्रस्तुत करता है। उन्होंने मातृसत्ता को केवल सांस्कृतिक प्रतीक के रूप में नहीं, बल्कि शासन के नैतिक दर्शन के रूप में अपनाया, जहाँ सत्ता सेवा, संवेदना और सामाजिक उत्तरदायित्व का माध्यम बनती है। उनकी नीतियाँ - चाहे 1978 की आरक्षण योजना हो, शिक्षा का सार्वजनिकीकरण या विकेंद्रीकृत शासन की पहल - सभी सामाजिक न्याय और समावेशी विकास के उस मॉडल की अभिव्यक्ति हैं, जिसमें समाज के सबसे वंचित वर्गों को बराबरी का स्थान मिलता है। उन्होंने यह सिद्ध किया कि विकास तभी सार्थक है जब उसमें स्त्री, दलित, पिछड़ा और अल्पसंख्यक वर्ग की सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित हो। बिहार की लोकसंस्कृति और सामाजिक परंपराओं से प्रेरणा लेते हुए उन्होंने राजनीति को मानवीयता और नैतिकता से जोड़ा। उनके शासन दर्शन ने लोकतंत्र को केवल संस्थागत ढाँचे से आगे बढ़ाकर "नैतिक साझेदारी" की अवधारणा में रूपांतरित किया। इस प्रकार, कर्पूरी ठाकुर का समाजवादी दृष्टिकोण भारतीय राजनीति में एक ऐसे समावेशी भविष्य की दिशा दिखाता है, जहाँ सत्ता का उद्देश्य नियंत्रण नहीं, बल्कि करुणा, समानता और सामाजिक एकता की स्थापना हो।

संदर्भ सूची

अगर्वाल, बी. (2001). जेंडर एंड कमांड ओवर प्रॉपर्टी: ए क्रिटिकल गैप इन इकोनॉमिक एनालिसिस एंड पॉलिसी इन साउथ एशिया. *वर्ल्ड डेवलपमेंट, 22*(10), 1455–1478.

कुमार, ए. (1984). सोशल चेंज एंड बैकवर्ड क्लास मूवमेंट इन बिहार. *इंडियन जर्नल ऑफ पॉलिटिकल साइंस, 45*(3), 267–280.

कुमार, एस. (2015). फोक ट्रेडिशन्स एंड सोशल इन्क्लूसिविटी इन बिहार: ए कल्चरल एनालिसिस. *जर्नल ऑफ इंडियन कल्चर एंड सोसाइटी, 12*(1), 45–59.

चौधुरी, एम. (2010). *फेमिनिज्म इन इंडिया: इश्यूज इन कंटेम्परेरी फेमिनिस्ट थ्योरी.* जेड बुक्स.

झा, पी. (2011). *डेमोक्रेसी एंड सोशल जस्टिस इन बिहार: ए स्टडी ऑफ पोस्ट इंडिपेन्डेन्स पॉलिटिक्स.* दिल्ली यूनिवर्सिटी प्रेस.

ठाकुर, क. (1981). रिजर्वेशन पॉलिसी एंड इट्स सोशल इम्प्लिकेशन्स इन बिहार. *इंडियन पॉलिटिकल रिव्यू, 22*(4), 109–125.

देसाई, एम. (1994). *द सोशल बैकग्राउंड ऑफ इंडियन नेशनलिज़्म.* पॉपुलर प्रकाशन.

मलाकर, बी. (2008). *कर्पूरी ठाकुर एंड द पॉलिटिक्स ऑफ सोशल जस्टिस.* पटना: बिहार रिसर्च इंस्टिट्यूट.

लोहीया, आर. (1962). *ए हैंडफुल ऑफ सोशलिज़्म,* नव हिन्द प्रेस.

शर्मा, आर. (2012). मेट्रिआर्की एंड इन्क्लूसिव डेवलपमेंट: रीथिंकिंग इंडियन पॉलिटिकल कल्चर. *सोशल फिलॉसफी रिव्यू, 18*(2), 75–93.

शर्मा, के. (2014). मदर गॉडेस एंड मेट्रिआर्कल वैल्यूज इन इंडियन सिविलाइजेशन. *इंडियन एंथ्रोपोलॉजिस्ट, 44*(2), 113–128.

सिंह, आर. (2014). लिंग्विस्टिक डायवर्सिटी एंड डेमोक्रेसी इन बिहार. *जर्नल ऑफ रीजनल स्टडीज, 9*(4), 201–218.

सिंह, आर. (2016). सोशल जस्टिस एंड रिजर्वेशन पॉलिटिक्स इन बिहार: द लेगेसी ऑफ कर्पूरी ठाकुर. *पटना यूनिवर्सिटी जर्नल ऑफ पॉलिटिकल स्टडीज, 7*(2), 24–52.

सिंह, वी. (2017). फोक फेस्टिवल्स एंड डेमोक्रेटिक वैल्यूज इन बिहार. *कल्चरल स्टडीज रिव्यू, 11*(3), 89–105.

सिन्हा, पी. (2020). विमेन्स पार्टिसिपेशन इन बिहार्स फोक कल्चर: ए सोशियो–पॉलिटिकल इंटरप्रिटेशन. *इंडियन जर्नल ऑफ जेंडर स्टडीज, 27*(1), 56–72.